© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 05 , Issue : 03 | January – March 2018

कुषाण काल में बौध प्रतीकों का निर्माण एवं प्रतिमाओं की विशेषताएँ

VINOD KUMAR, Reserch Scholar, Department of A.I.H, Culture & Archeology
Kurukshetra University , Kurukshetra

सार : कुषाण वंश (लगभग 1 ई. से 225 तक) ई. सन् के आरंभ से शकों की कुषाण नामक एक शाखा का प्रारम्भ हुआ। विद्वानों ने इन्हें युइशि, तुरूश्क (तुखार) नाम दिया है। युइशि जाति प्रारम्भ में मध्य एशिया में थी। वहाँ से निकाले जाने पर ये लोग कम्बोज-वाह्लीक में आकर बस गये और वहाँ की सभ्यता से प्रभावित रहे। हिन्दूकुश को पार कर वे चितराल देश के पश्चिम से उत्तरी स्वात और हज़ारा के रास्ते आगे बढ़ते रहे। तुखार प्रदेश की उनकी पाँच रियासतों पर उनका अधिकार हो गया। ई. पूर्व प्रथम शती में कुषाणों ने यहाँ की सभ्यता को अपनाया।

ISSN : 2348-5612 © URR
9 770234 856124

कुषाण काल में मथुरा में तीन धार्मिक संप्रदाय प्रमुख थे-जैन, बौद्ध और ब्राह्मण। इनमें ब्राह्मण धर्म को छोड़कर किसी को भी मूलत: मूर्ति पूजा मान्य न था। परन्तु मानव की दुर्बलता एवं अवलम्ब अथवा आश्रय खोजने की स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण शनै: शनै: इन सम्प्रदायों के आचार्य स्वंय ही उपास्य देव बन गये। साथ ही साथ उपासना के प्रतीकों का भी प्रादुर्भाव हुआ। ई. पू. द्वितीय शताब्दी के पहले से ही बुद्ध के प्रतीक जैसे-स्तूप, भिक्षापात्र, उण्णीश, बोधिवृक्ष, आदि लोकप्रिय हो गये थे। जैन संप्रदाय में भी चैत्य स्तम्भ, चैत्य वृक्ष अष्ट माङ्गलिक चिन्ह आदि प्रतीकों को मान्यता मिल रही थी। कुषाण काल तक पहुँचते-पहुँचते इन प्रतीकों के स्थान पर प्रत्यक्ष मूर्ति की संस्थापना की इच्छा बल पकड़ने लगी और अल्प काल में ही माथुरी कला ने तीर्थ करों की मूर्तियाँ और बौद्ध मूर्तियों को जन्म दिया। इसी के साथ-साथ विष्णु, दुर्गा, शिव, सूर्य, कुबेर आदि ब्राह्मण धर्म की उपास्य मूर्तियाँ भी इसी समय बनी। भारतीय कला को मथुरा कला की यह सबसे अनूठी देन है। गुप्त और गुप्तोत्तर कला के विशाल प्रतिमा-संग्रह का आधार कुषाण कला में है।

मथुरा के इतिहास में यहाँ की जनता शक-क्षत्रपों के समय सर्वप्रथम विदेशी सम्पर्क में आई परन्तु उनकी अपेक्ष उस पर कुषाण शासन का प्रभाव अधिक चिरस्थाई रुप से पड़ा। इस समय यहाँ के कलाकारों को अपनी जीविक के लिए विदेशीय का ही आश्रय ढूँढना पड़ा होगा। इन्हीं कारणों से कवि के समान कलाकार की छेंनी में भी कुषाण प्रभाव झलकने लगा। नवीन संस्कृति नवीन शासक और नवीन परम्पराओं के साथ नवीन विचारों का प्रार्दुभाव हुआ जिसने एक नवीन कला शैली को जन्म दिया जो 'मथुरा कला' 'कुषाण कला' इस अर्थ में उन सभी शैलियों का समावेश होगा जो सोवियत तुर्किस्तान से सारनाथ तक फैले हुए विशाल कुषाण साम्राज्य प्रचलित थी। इस अर्थ वल्ख की कला, गांधार की यूनानी बौद्ध कला, सिरकप (तक्षशिला) की कुषाण कला तथा मथुरा की कुषाण कला का बोध होगा।

बुद्ध प्रतिमा का निर्माण

पश्चिम के विद्वानों ने जब भारतीय कला का अध्ययन किया तब उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि सर्वप्रथम बुद्ध की मूर्ति कुषाण सम्राटों के काल में गांधार कला शैली के कलाकारों द्वारा बनाई गई। भारतीय विद्वानों ने इस सिद्धान्त में कई त्रुटियाँ देखी और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बुद्ध की प्रथम प्रतिमा गांधार कला शैली में नहीं अपितु मथुरा में बनी। इनकी इस धारणा का प्रमुख आधार बुद्ध बोधिसत्वों की वे लेखांकित प्रतिमाएँ हैं। जिन पर स्पष्टत: कनिष्क के राज्य संवत्सर का उल्लेख है। गांधार कला में इस प्रकार की सुनिश्चित तिथियों से युक्त लेखांकित प्रतिमाओं का सर्वथा अभाव है। इसके अतिरिक्त देश की तत्कालीन स्थिति व धार्मिक अवस्था भी इसी ओर संकेत करती है कि प्रथम बुद्ध मूर्ति मथुरा में ही बनी होगी न कि गांधार में। संक्षेप में उस समय की स्थिति को यों समझा जा सकता है।

इसवी सन् की प्रथम शताब्दी के पूर्व मथुरा में वैष्णव धर्म व इससे संबंधित भक्ति संप्रदाय जोर पकड़ चुका था। महाक्षत्रप 'शोडास' के समय में ही यहाँ वासुदेव का मन्दिर था और बलराम अनिरुद्धादि पंचवीरों की प्रतिमाओं का पूजा समाज में प्रचलित था। दूसरी ओर जैन आचार्यों की मूर्तियाँ गढ़ी जा रहीं थीं और वहाँ भी भक्ति संप्रदाय बल पकड़ रहा था। रहा बौद्ध समाज, इनमें पुष्पदीपादि द्वारा बुद्ध के प्रतीकों का पूजन तो प्रचलित था ही, केवल निराकार तथागत की साकार प्रतिमा का अभाव था। इस अभाव को दूर करने में महासंधि के मत के बौद्धों ने बड़ी सहायता की। बौद्धों के धार्मिक जगत में इस समय मतभेद चल रहा था कुछ लोग प्राचीन सिद्धान्तों वा नियमों को अपरिवर्तित रुप में ही मानना उपयुक्त समझते थे। पर दूसरा संप्रदाय परिवर्तनवादी था जो महासंधिक नाम से प्रसिद्ध था। आगे चल कर ये दोनों मत 'हीनयान' और 'महायान' के नाम से पहचाने जाने लगे। महासाधिक लोगों ने बुद्ध की निराकार मूर्ति और उसका पूजन उचित माना। उनका कहना था कि निर्वाण प्राप्ति के पूर्व बुद्ध बोधिसत्व के नाम से पहचाने जाते हैं। निर्वाण के उपरान्त पुन: कोई इस लोक में नहीं आता। बुद्ध ने संबोधि व ज्ञान तो प्राप्त कर लिया था पर निर्वाण को पाना इसलिए अस्वीकार किया कि वे लोगों के कल्याण के लिए बार-बार पृथ्वी पर अवर्तीण हो सके। अत: निर्वाण प्राप्त बुद्ध की तो नहीं, पर संबोधि प्राप्त बोधिसत्व की प्रतिमा बनाना अवैध नहीं क्योंकि वे साकार रुप में मनुष्यों और देवों के द्वारा देखे और पूजे जाते हैं। कदाचित इसी लिए प्रारम्भिक बुद्ध मूर्तियों में अंङ्कित लेखों में उन्हें बोधिसत्व ही कहा गया है। आगे चलकर महाज्ञानियों ने एक बुद्ध प्रतिमा ही नहीं अपितु शताधिक देवी-देवताओं की मूर्तियों के निर्माण और पूजन की पद्धति को अपनाया।

कुषाण सम्राट कनिष्क का शासन काल भी बुद्ध की प्रतिमा निर्माण के लिए प्रेरक हुआ। इस शासक ने अपनी धार्मिक सहिष्णुता के प्रदर्शन के लिए अपनी राजमुद्राओं पर विविध धर्मों के देवी देवताओं को स्थान दिया। शैवों का शिव, ब्रहाम्मण धर्म के चन्द्र, सूर्य, वायु आदि अन्य देव तथा ईरानी मत के देव गणों में 'एतशो', 'नाना' आदि को इसके सिक्कों पर अंङ्कित किया जा रहा था। इन्हीं के साथ उसने बुद्ध की मूर्ति से भी अपनी कुछ मुद्राएँ सुशोभित कीं।

गांधार कला के बुद्ध मूर्तियों की तिथि विषय की अनिश्चित की ओर हम पहले ही संकेत कर चुके हैं। मथुरा में कुषाण शासक 'कनिष्क' के राज्यरोहण के दूसरे वर्ष से ही बुद्ध प्रतिमा का निर्माण प्रारम्भ हुआ जो बाद तक चलता रहा।

बुद्ध प्रतिमा के निर्माण के आधार

बुद्ध की खड़ी मूर्तियों की कल्पना 'यक्ष' प्रतिमाओं के आधार पर की गई। इस यक्ष प्रतिमाओं का उल्लेख पहले किया जा चुका है, जो इस समय के पहले से ही लोक कला में बन रही थीं। बैठी हुई बुद्ध मूर्ति का आधार कदाचित भरहुत काल में दिखलाई पड़ने वाली दीर्घ तापसी की मूर्ति है। कुछ विद्वान इसका आधार उन तीर्थकर प्रतिमाओं को मानते हैं, जिनका अंकन जैन 'आयागपटटों' पर हुआ है।

बुद्ध के बालों का अंकन निदान कथा के आधार पर हुआ। प्रारम्भिक अवस्था में बुद्ध का मस्तक मुण्डित होता है और केवल एक ही लट ऊपर दाहिनी ओर घूमती हुई दिखलाई पड़ती है। बाद में तो सारा मस्तक ही छोटे-छोटे घुँघराले बालों से आवृत्त होने लगता है। उनके मस्तक के पीछे दिखलाई पड़ने वाले प्रभामण्डल का उद्भव कदाचित उन ईरानी देवी-देवताओं की मूर्तियों से हुआ जिन्हें वहाँ 'चजत' के नाम से जाना जाता है। कुषाण मुद्राओं पर अंकित इन देवी-देवताओं की मूर्तियों में प्रभामण्डल विद्यमान है।

चीवर संघाटी आदि बुद्ध के वस्त्रों की कल्पना तो प्रत्यक्ष जगत से ही ली गई होगी। वैसे 'विनयपिटक' में भी इसका विस्तृत विवरण मिलता है।९ बुद्ध के पैरों के नीचे दिखलाई पड़ने वाला कमल कदाचित सांची की कलाकृतियों की देन है।

प्रारम्भिक बुद्ध प्रतिमाओं की विशेषताएँ

इस प्रकार धर्माचार्य, शासक, कलाकार व तत्कालीन जनता के सहयोग से जो प्रारम्भिक बुद्ध मूर्तियाँ कुषाण काल में निर्मित हुई उनमें निम्नांकित विशेषताएँ देखी जा सकती हैं -

- मुण्डित मस्तक, ऊपर कपर्द तथा घुमावदार एक लट से शोभित उष्णीष।
- ऊर्ण या दोनों भोहों के मध्य बना हुआ एक छोटा सार्वतुलाकार चिह्न। महापुरुषों के बत्तीस लक्षणों में इनकी गणना है।

ललितविस्तार के वर्णनानुसार मार पराजय के समय बोधिसत्व की 'ऊर्णा' से एक ज्योति उद्‌भूत हुई, जिसने मार के प्रसादों को कंपित कर दिया। कुष्ण कालीन बुद्ध मूर्तियों में ऊर्णा चिह्न अनिवार्य रुप से विद्यमान रहता है। एक मूर्ति में (मथुरा संग्रहालय मूर्ति संख्या ००.ओ-२७) ऊर्णा के स्थान पर अर्थात भूमध्य में गड्ढा बना है जिसमें कदाचित प्रकाश का प्रतीक कोई रत्न जड़ा गया हो।

- विशाल एवं चौड़ी छाती तथा एक, बहुधा बाँया कंधा वस्त्र से ढ़का हुआ।१३
- दाहिना हाथ अभयमुद्रा में ऊपर उठा हुआ, बाँया हाथ आसनस्थ मूर्तियों में जाँघ पर तथा

खड़ी प्रतिमाओं में वस्त्र के छोर को पकड़ मुट्ठी बाँये हुए।

- शरीर में चिपका हुआ तथा बाँये कंधे व निचले भाग पर सिकुड़नों से शोभित वस्त्र।
- कमर में गाँठ पड़ी हुई पट्टी या कायबंधन।
- पूरी खुली हुई आँखें तथा स्मितयुक्त मुख।
- आध्यात्मिक भाव एवं देवतत्व के प्रगति करण की अपेक्षा शारीरिक भावभंगिमा के चित्रण का
- आधिक्य ।
- दोनों पैरों का समान रुप से सीधे तने रहना, कभी-कभी उनके बीचों-बीच कमल कलियों
- का गुच्छ१४, क्वचिंत स्त्री मूर्तियाँ१५, सिंह१६, अथवा मैत्रेय बोधिसत्व१७ का बना रहना।
- हस्तिनखों से युक्त प्रभामण्डल।

गांधार कला के सम्पर्क में आने के बाद कतिपय मूर्तियों के गठन में कुछ परिवर्तन हुए जिनका विवेचन पहले हो चुका है। उत्तर कुषाण काल में आसनस्थ मूर्ति के गढ़ने में शैली अधिक सुथरी हुई है। चीवर तथागत के दोनों कंधों पर पड़ा रहता है। साथ ही दोनों पैर भी वस्त्र में छिपे रहते हैं और वस्त्र का सामने वाला छोर चौकी पर लटकता दिखलाई पड़ता है। जैन तीर्थकरों के समान बुद्ध की चरण चौकी के सामने वाले भाग पर दाताओं की मूर्तियों का अंकन अब प्रारम्भ हो जाता है। शनै: शनै: मुण्डित मस्तक लुप्त होकर घूँघरों का निर्माण साधारण परिपाटी बन जाती है। इस कला की बुद्ध व बोधिसत्व प्रतिमाओं के हाथ केवल चार मुद्राओं में अभय भूमिस्पर्श ध्यान तथा धर्म-चक्र-प्रवर्तन में दिखलाई पड़ते हैं। पाँचवी मुद्रा 'वरद' का यहाँ सर्वथा अभाव है।

सन्दर्भ सूचि :

1. पाण्डेय प्रभाकर : प्राचीन भारतीय कला में प्रतीक , शारदा पब्लिशिंग हाउस , दिल्ली . प्रथम संस्करण २००१ |
2. श्री वास्तव , विमल मोहिनी : प्राचीन भारतीय कला में मांगलिक प्रतीक , विश्विद्यालय प्रकाशन प्रकाशन चौक वाराणसी , प्रथम संस्करण २००२ |
3. प्रभाशंकर पाण्डेय : (सुप्रतीका) प्राचीन भारतीय कला में प्रतीक |

4. मथुरा संग्रहालय मूर्ति संख्या ३८.२७९८, प्रयाग संग्रहालय मूर्ति संख्या के. १।
5. बम्बई संग्रहालय की मूर्ति ख्एग्रङ्च्, ज्रज्र, १९०२, पृ. २६९।
6. बोधिसत्व प्रतिमा सारनाथ संग्रहालय।
7. राधाकुमुद मुकर्जी, NOTS ON EARLY INDIAN ART, JUPHS, खण्ड-१२, भाग-१ पृ. ७० के सामने वाला चित्र, लखनऊ संग्रहालय मूर्ति संख्या ओ. ७१।
8. कृष्णदत्त वाजपेयी, THE KUSHANA ART OF MATHURA, मार्ग, खण्ड-९, संख्या-२, मार्च १९६२ पृ. २८।
9. ललितविस्तार, ८, पृ. ८४। दिव्यावदान, २७, ३८, पृ. ४९३-९४।